इकाई 28 आर्थिक सुधार और सामाजिक न्याय

इकाई की रूपरेखा

28.0 उद्देश्य
28.1 प्रस्तावना
28.2 1990 में अर्थव्यवस्था के सम्मुख समस्याएँ
28.2.1 आर्थिक सुधारों की आवश्यकता
28.2.2 आर्थिक सुधारों के उद्देश्य
28.3 आर्थिक सुधारों का पैकेज
28.3.1 सुधारों से आशय
28.4 आर्थिक सुधारों की प्रगति
28.5 आर्थिक सुधार और सामाजिक न्याय
28.5.1 मानवीय चेहरे के साथ सुधारों की आवश्यकता
28.6 सारांश
28.7 शब्दावली
28.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें
28.9 बोध प्रश्नों के उत्तर अथवा दिशा-संकेत

28.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप निम्नलिखित प्रश्नों का उत्तर दे सकेंगे :

- 1990 दशक के शुरू होने के समय से भारत को किन गंभीर समस्याओं का सामना करना पड़ा;
- जून 1991 में बनी नई सरकार ने तात्कालिक कार्यों पर किस प्रकार ध्यान दिया;
- आर्थिक नीति की दिशा में परिवर्तन करने का क्या औचित्य था;
- नई आर्थिक नीति के पैकेज के तत्व क्या हैं;
- नीति के विभिन्न पक्षों के सापेक्ष महत्त्व क्या रहे हैं;
- सुधार प्रक्रिया की प्रगति की क्या गति रही है; तथा
- आर्थिक सुधारों संबंधी उपाय क्या सामाजिक न्याय के प्रति अधिक संवेदनशील रहे हैं;

28.1 प्रस्तावना

कुछ लोगों का मानना है नेहरुवादी विकास मॉडल गलत था। समाजवाद के असफल होने का कारण यह था कि यह सतत आधार पर धन पैदा न कर सका। फिर भी गरीबी और असम्पन्नता अभी भी समाजवाद के प्रमुख विषय उसी प्रकार से बने रहे हैं जैसे कि पहले थे। भारत के प्रमुख उद्देश्य में परिवर्तन नहीं हुआ है लेकिन संवृद्धि की युक्तियों को बदलने की आवश्यकता है जो बातें विशेषत: भारत के लिए है उन्हें ध्यान में रखना होगा। समाजवाद की स्वाभाविक विशेषता की जड़ें बहुत गहरी हैं। 1990-91 में हुए विदेशी मुद्रा संकट का कारण योजना-मॉडल नहीं, बल्कि रक्षा-सामग्रियों के आयात पर किया गया बहुत अधिक व्यय था।

युक्तियों को बदलने के संबंध में लोग मौन रूप से एकमत हैं। पर्यावरण में सुधारों की प्रक्रिया के संबंध में मुख्य प्रश्न 'राज्य और शुद्ध बाजार' के बीच 'निरर्थक वाद-विवाद' नहीं बल्कि यह प्रश्न है कि निम्नलिखित के संक्रमण की व्यवस्था कैसे की जाए : (i) सरकार की ओर से अत्यधिक हस्तक्षेप से कम हस्तक्षेप, (ii) पहले जिन गलत क्षेत्रों में हस्तक्षेप किया जाता था उसके स्थान पर पहले उपेक्षित महत्त्वपूर्ण

क्षेत्रों में हस्तक्षेप करना और (iii) नीति के साधनों के रूप में एक रूप (मात्रात्मक नियंत्रण पर निर्भरता) से दूसरे रूप (कीमतों पर निर्भरता) को। दोष योजना में नहीं बल्कि उसके अति केंद्रीयकरण में है।

आयात प्रतिस्थापन पर आधारित स्वावलंबन की युक्ति के साथ-साथ निर्यात संवर्धन की युक्ति का भी प्रयोग करना होगा। 1950 के दशक से 1965 तक तेजी से औद्योगिक संवृद्धि की प्रथम अवस्था की विशेषता यह थी कि सरकार ने सार्वजनिक निवेश के रूप में प्रोत्साहन प्रदान किया। 1980 के दशक में हुई तेजी (boom) को सरकारी व्यय के रूप में सार्वजनिक उपभोग से बल मिला। ऐसी स्थिति को बहुत समय तक कायम नहीं रखा जा सकता था, जिसके फलस्वरूप सरकार को राजकोषीय घाटे की स्थिति का सामना करना पड़ा और अर्थव्यवस्था में भुगतान संतुलन संबंधी समस्याएँ उठ खड़ी हुईं लेकिन इस संबंध में मुख्य बात यह है कि मुद्रा-प्रसरण की सभी अवस्थाओं का आधार अब तक सार्वजनिक निवेश रहा है या सार्वजनिक व्यय। भारत में अब तक किए गए आर्थिक सुधारों और नीति परिवर्तनों में समग्र माँग को बढ़ाने की निम्नलिखित दो विधियों पर जोर दिया गया है :

i) निजी निवेश की प्रमुखता
ii) मुख्यतः निजी उपभोग द्वारा प्रसार, जिसमें निर्यात भी शामिल है

आर्थिक सुधारों के संदर्भ में निजी निवेश-देशीय और विदेशी के व्यवहार के संबंध में बहुत कुछ वाद-विवाद हुआ है। आर्थिक सुधारों में सरकार की भूमिका की समीक्षा अथवा सामान्य रूप में बाज़ार की तुलना में राज्य की समीक्षा प्रतिबिंबित होती है। 1990 के दशक के प्रारंभिक वर्षों तक यदि सभी नहीं, तो अधिकतर अर्थव्यवस्थाओं ने बाज़ार की तुलना में सरकार की भूमिका के संबंध में पुनः विचार करना तथा उसे घटाना शुरू किया। इस नई घटना में हम 'सरकार की असफलता' और 'बाजार की असफलता' के बीच नया आदान-प्रदान स्पष्ट रूप से देखते हैं, जिसे सरकार और बाज़ार के बीच संबंध की नई वास्तविकता भी कहा जा सकता है।

28.2 1990 में अर्थव्यवस्था के सम्मुख समस्याएँ

अर्थव्यवस्था की पुनः संरचना के लिए उठाए जाने वाले कदमों के संबंध में विचार करने के पहले स्पष्ट रूप से यह जानना आवश्यक है कि 1990 में भारतीय अर्थव्यवस्था के सम्मुख कौन-कौन सी प्रमुख समस्याएँ थीं।

निम्नलिखित के संबंध में विचार करें :

1) बहुत बड़ी मात्रा में राजकोषीय घाटा, उसका मुख कारण है आय से अधिक व्यय का होना।
2) बहुत बड़ी मात्रा में विदेशी ऋण, जिसके संबंध में ऋण-सेवा अनुपात और ऋण-निर्यात बहुत अधिक था जिसके फलस्वरूप देश की उधार-पात्रता में कमी हुई तथा ऋणों की चुकौती की समस्याएँ गंभीर हो गई।
3) समस्त अर्थव्यवस्था में कार्य-कुशलता के स्तर का नीचा होना, जिसके फलस्वरूप संसाधनों की बहुत अधिक बरवादी होती है।
4) उद्योग क्षेत्रक में सुस्ती की स्थिति, कृषि उत्पादन में गतिहीनता तथा अर्थव्यवस्था में संवृद्धि की कम आशा की स्थिति का होना। इनके साथ-साथ ही गंभीर मुद्रास्फीति की समस्याएँ भी उठ खड़ी होना।

1991 के मध्य में देश और अर्थव्यवस्था के सम्मुख गंभीर स्थिति थी। भुगतान संतुलन की स्थिति इतनी अधिक खराब हो गई थी तथा विदेशी मुद्रा रिज़र्व इतना कम हो गई थी कि ऋण के भुगतान में चूक की स्थिति आने वाली थी। 1985-1990 के बीच भारतीय अर्थव्यवस्था ने वास्तविक संवृद्धि के रूप में देश के अंदर बहुत ही अच्छा किया था लेकिन राजकोषीय स्थिति बहुत तेजी से खराब हो गई थी। बजट घाटा

तथा समस्त राजकोषीय घाटा में बहुत तेजी से वृद्धि हुई और दूसरी ओर ब्याज के भुगतान में बहुत अधिक वृद्धि हुई। 1970 के दशक के अंत में केंद्र और राज्यों के राजकोषीय घाटे का कुल योग सकल देशीय उत्पाद (GDP) के लगभग 7.5 प्रतिशत था, लेकिन 1991 तक यह बढ़कर लगभग 11 प्रतिशत हो गया। केवल केंद्रीय सरकार का राजकोषीय घाटा 1970 के दशक के अंत में 6% से भी कम था लेकिन इसी अवधि में यह बढ़कर 8.5% हो गया। इसके फलस्वरूप केंद्रीय सरकार के बजट के विभिन्न मदों में से सबसे बड़ी मद ऋण-भुगतान हो गया, अर्थात् 1980-81 में यह GDP का 2 प्रतिशत था परंतु 1990-91 तक यह बढ़कर GDP के लगभग 4 प्रतिशत हो गया। इस प्रकार 1990 के दशक में देश का राजकोषीय घाटा इतना अधिक हो गया कि वह धारणीय नहीं (unsustainable) था।

28.2.1 आर्थिक सुधारों की आवश्यकता

निम्नलिखित कारणों से सुधार अति आवश्यक थे :

1) भारत की साख-पात्रता के गिर जाने के कारण वाणिज्य ऋण का मिलना कठिन हो गया।

2) कुवेत संकट के बाद पश्चिम एशिया से कोष का प्रवाह बंद हो गया, 1991 के दशक के प्रारंभिक वर्षों में NIR ने अपनी जमा राशि में से बहुत भाग वापस ले लिया तथा प्रत्यक्ष विदेशी निवेश बहुत ही कम था।

3) सोवियत संघ के विघटन के बाद उसके राज्यों द्वारा विदेशी सहायता की माँग करने तथा संयुक्त राज्य अमेरिका (USA) में देश के अंदर खर्च की माँग बढ़ने के कारण निर्धन देशों को सहायता की रकम दिन प्रतिदिन घटने लगी।

4) समस्त विश्व में पुरानी प्रवृत्तियों के समाप्त होने तथा विश्वव्यापी बाज़ार के आविर्भाव होने के फलस्वरूप भारत के लिए अपनी आर्थिक नीति में सुधार लाने की कार्यवाही करने के अतिरिक्त और कोई विकल्प नहीं रहा।

फिर भी यह कहना उचित नहीं होगा कि आर्थिक सुधार केवल इन आर्थिक बाध्यताओं के ही फलस्वरूप हुए। 1980 के दशक से ही समष्टि आर्थिक सुधारों की आवश्यकता महसूस की जाने लगी थी। परमिट राज की नियंत्रण प्रणाली बदनाम हो चुकी थी। इस प्रकार इस प्रणाली को समाप्त कर देने का समय आ गया था। सभी जानते हैं कि संरचनात्मक समायोजन करना कठिन विकल्प होता है। इस विकल्प को कठिन इसलिए कहा जाता है कि इसके कुछ ऐसे निहितार्थ होते हैं जिन्हें आम जनता पसंद नहीं करती, कम से कम अल्प काल में।

भारतीय अर्थव्यवस्था के लिए 1991 युग-प्रवर्तक वर्ष था। राजकोषीय और भुगतान संतुलन संकटों से अर्थव्यवस्था को बचाने के लिए दृढ़ कदम उठाए गए। कई दशकों से अर्थव्यवस्था जिन जंजीरों में जकड़ी हुई थी उससे मुक्त कराने के लिए उद्योग, विदेश व्यापार और निवेश के क्षेत्रों में व्यापक बाज़ार उन्मुख सुधार किए गए। आर्थिक सुधार के कई आयाम होते हैं। आमूल सुधार कार्यक्रमों के अंतर्गत आर्थिक प्रणाली के सभी प्रमुख पक्ष आ जाने चाहिए। जून 1991 से भारतीय अर्थव्यवस्था स्थिरीकरण-कार्यक्रम के दौरान से गुजर रही है। आपातिक घटनाओं का सामना करने के लिए यह आघात चिकित्सा (Shock therapy) है। यह कार्यक्रम लघु कालीन है तथा इसे एक-दो वर्षों के अंदर पूरा करना है। इसकी सफलता के लिए निर्णायक परीक्षा है : क्या यह टिकाऊ संवृद्धि के लिए स्थितियों को लाता है? इस संकट ने आवश्यक कर दिया कि व्यापार, उद्योग और वित्त के क्षेत्रकों में अनेक संरचनात्मक परिवर्तन किए जाए जिससे अर्थव्यवस्था में संवृद्धि के लिए मार्ग प्रशस्त हो जाए।

28.2.2 आर्थिक सुधारों के उद्देश्य

जून 1991 में जब श्री पी.वी. नरसिम्हराव के नेतृत्व में कांग्रेस पार्टी सत्ता में आई तब इसके समक्ष निम्नलिखित दोहरे कार्य थे :

1) राजकोषीय और भुगतान-संतुलन घाटे को कम करके समष्टि-आर्थिक स्थिरता को पुनः लाना, और
2) आर्थिक सुधार की प्रक्रिया को पूरा करना अर्थात् संरचनात्मक समायोजन, जिसे पिछले दस वर्षों में आंशिक और क्रमिक रूप से किया गया है।

इस समय चल रहे आर्थिक सुधारों के जो लक्ष्य घोषित किए गये हैं, वे देखने में क्रांतिकारी लगते हैं। इन सुधारों के लक्ष्य निम्नलिखित को प्राप्त करना है :

1) राजकोषीय, मुद्रा और विनिमय दर की नीतियों द्वारा स्थिरीकरण और समष्टि-आर्थिक संतुलन,
2) अन्य विकासोन्मुख देशों के ही समान उदार व्यापार प्रणाली जिसमें आयात के लिए लाइसेंस की व्यवस्था न हो,
3) ऐसी विनिमय दर प्रणाली जो रुपया को परिवर्तनीय बनाए, कम से कम भुगतान संतुलन के चालू खाता लेन-देनों के लिए,
4) प्रतियोगी वित्तीय प्रणाली सही विनियमों के साथ,
5) अनेक नियंत्रणों के मुक्त उद्योग क्षेत्रक, और
6) स्वायत्ता, प्रतिस्पर्धी और सही सार्वजनिक उद्यम।

इन सभी उपायों का लक्ष्य एक ही है। वह है प्रणाली की कार्यकुशलता में सुधार लाना। अनेक नियंत्रणों वाले विनियम तंत्र ने अर्थव्यवस्था की क्षमता को घटा दिया है, यहाँ तक कि सार्वजनिक क्षेत्रक में परस्पर प्रतियोगिता भी घटा दिया है। आर्थिक सुधारों या नई आर्थिक नीति (NEP) का जोर इस बात पर है कि अर्थव्यवस्था में अधिक प्रतियोगी पर्यावरण बनाया जाए, जिससे प्रणाली की उत्पादिता और कार्यकुशलता में सुधार लाया जा सके। यह कार्य फर्मों के प्रवेश पर लगाएँ अवरोधों और उनकी संवृद्धि पर लगाए गए प्रतिबंधों को दूर करके किया जा सकता है।

28.3 आर्थिक सुधारों का पैकेज

यह जानना महत्त्वपूर्ण है कि आर्थिक सुधार पैकेज क्या है तथा उतना ही महत्त्वपूर्ण यह भी जानना है कि वह क्या नहीं है। संक्षेप में कहा जा सकता है कि नीतियों के निम्नलिखित तीन सेटों को मिलाकर आर्थिक सुधारों का पैकेट बनता है (अरुण घोष, 1992):

i) अर्थव्यवस्था का स्थिरीकरण, जिसका अर्थ है समग्र माँग और समग्र पूर्ति में संतुलन कायम करना। इनके बीच असंतुलन के कारण ही 1980 के दशक में केंद्रीय सरकार के बजट में लगातार ही घाटे की स्थिति बनी रही। जिसकी अभिव्यक्ति देश के अंदर बढ़ती हुई मुद्रास्फीति तथा बाहरी देशों को भुगतान में घाटे की स्थिति के रूप में हुई। इस संदर्भ में जो नीतियाँ अपनाई गईं वे बजट और ऋण नीतियों से संबंधित थी।

ii) भारतीय उद्योग को अंतरराष्ट्रीय स्तर पर प्रतिस्पर्धी बनाने के प्रयोजन से भारतीय अर्थव्यवस्था की पुनःसंरचना करना। इस संदर्भ में जो नीतियाँ अपनाई गई, वे थीं उद्योग और विदेश व्यापार नीति, वित्तीय संस्थाओं (जिसमें बैंक भी आ जाते हैं) की उधार देने की नीतियाँ, सरकारी व्यय और सार्वजनिक निवेश का स्वरूप, जिसके अंतर्गत आते हैं सार्वजनिक क्षेत्रक से संबंधित नीतियाँ तथा बीमार इकाइयों के संबंध में उठाए गए कदम, सामान्य रूप में आर्थिक सहायता और विशेषतः छोटे-छोटे व्यवसायों और छोटे फार्मों को आर्थिक सहायता।

iii) भारतीय अर्थव्यवस्था का विश्वव्यापीकरण, वस्तुओं (उपभोक्ता वस्तुओं सहित) के आयात प्रतिबंधों को हटाना (चरणों में), सीमाशुल्कों को घटाना, विदेशी पूँजी (अल्पकालीन पूँजी सहित) का अंतःप्रवाह

मुक्त रूप से होने देना, सेवा क्षेत्रक (विशेषतः बैंकिंग, बीमा और जहाजरानी के संबंध में) में विदेशी पूँजी का प्रवेश होने देना तथा रुपये की पूर्णतः परिवर्तनीयता।

28.3.1 सुधारों से आशय

डा. अरुण घोष के अनुसार अर्थव्यवस्था के कार्यकलापों और उसकी भविष्य की दिशा के लिए तीन सेटों वाली इस विधि के महत्त्वपूर्ण आशय होते हैं। इनसे अभिप्राय होता है भूतकाल से पूर्णतः संबंध विच्छेद तथा इनसे अनेक मसले उत्पन्न होते हैं जिन्हें नीचे दिया जा रहा है :

क) जो विकास किए जाने हैं उनके स्वरूप की वांछनीयता,
ख) विभिन्न नीतियों के समय तथा उनके क्रम (नीतियों में बार-बार परिवर्तन, जिनके फलस्वरूप भारत की अर्थव्यवस्था में अनिश्चितता की स्थिति आती है),
ग) नीति के विभिन्न पक्षों का सापेक्ष महत्त्व, जहाँ तक उनका संबंध शिक्षा, स्वास्थ्य, रोजगार और अर्थव्यवस्था के विश्वव्यापीकरण के प्रावधानों से संबंधित देश के अंदर की प्राथमिकताओं के साथ है,
घ) नीतियों के पैकेज का संभावित परिणाम।

इस संबंध में ध्यान देने की बात यह है कि स्थिरीकरण नीतियों का प्रयोजन गलतियों को सुधारना और अल्पकाल में अर्थव्यवस्था की आंतरिक स्थिति को ठीक करना है परंतु संरचनात्मक सुधार का उद्देश्य मध्यकाल में आर्थिक संवृद्धि की गति को तेज करना है। संरचनात्मक सुधार की नीतियाँ तब तक सफल नहीं हो सकती जब तक कि कुछ मात्रा में स्थिरीकरण न किया जाए। लेकिन स्थिरीकरण अपने आप में ही तब तक पर्याप्त नहीं होगा जब तक कि संरचनात्मक सुधार न किए जाएँ, जिससे हाल में बार बार उठ खड़ी समस्याओं का सामना किया जा सके। मोटे तौर पर संरचनात्मक सुधार जिन क्षेत्रों में किए गए, वे थे उद्योग लाइसेंस और विनियमन, विदेश व्यापार और निवेश तथा वित्त क्षेत्रक। जहाँ तक विदेश व्यापार नीति का संबंध है, उसका लक्ष्य यह था कि आयातों के संबंध में प्रणाली को उदार बनाया जाए तथा आयातों और निर्यातों में घनिष्ठ संबंध कायम किया जाए। एक दूसरा उद्देश्य टैरिफ दरों को घटाना है। आयात शुल्कों के संबंध में नीति क्रमिक रही है तथा उच्च लागत वाली अर्थव्यवस्था से बचने के लिए भारत में टैरिफ दरों को क्रमशः घटा दिया गया है। जहाँ तक विदेशी निवेश का संबंध है, नई नीति के उपायों से निश्चित रूप में भूतकाल से संबंध विच्छेद हो जाता है। जहाँ तक रुपये के विनिमय दर अवमूल्यन का संबंध है, एक्जिम स्क्रिप स्कीम, आंशिक विनिमेयता योजना, एकीकृत विनिमय दर तथा आगे चलकर चालू खाने पर पूर्ण विनिमेयता का मुख्य उद्देश्य यह है कि निर्यात की तुलना में आयात बहुत अधिक न हो जाए।

28.4 आर्थिक सुधारों की प्रगति

आर्थिक सुधारों के तत्त्व क्या रहे हैं? यह कार्यक्रम जब से चलाया गया तब से जिन प्रमुख आर्थिक नीति निर्णयों को घोषित किया गया उनकी सूची को दिया जा रहा है :

1) रुपये का अवमूल्यन : दो शीघ्रगामी चरणों में लगभग 19% ।

2) व्यापार नीति में सुधार : निर्यात सहायिकी (export subsidy) को समाप्त कर दिया गया। EXIM स्क्रिम लागू की गई, परंतु बाद में अगस्त 1994 से इसके स्थान पर व्यापार खाते पर रुपये की तथा कथित आंशिक विनिमेयता (40:60 फार्मूला), एकीकृत विनिमय दर तथा चालू खाते पर रुपये की पूर्ण विनिमेयता लागू की गई।

3) मुख्यतः सामरिक महत्त्व की वस्तुओं और खतरनाक वस्तुओं का उत्पादन करने वाले 6 उद्योगों को छोड़कर अन्य उद्योगों से संबंधित लाइसेंस प्रणाली को समाप्त कर दिया गया।

4) एकाधिकार और विरोधक व्यापारिक व्यवहार (MRTP) अधिनियम के उस पूरे के पूरे अध्याय को समाप्त कर दिया गया जिसका दिखावे के रूप में उद्देश्य था आर्थिक शक्ति के संकेन्द्रण को रोकना।

5) विनिमेयता खंड (Convertibility clause) को समाप्त कर दिया गया। इस खंड की सहायता से सावधि ऋण देने वाली वित्तीय संस्थाएँ अपनी सुविधा अनुसार कीमत और समय पर औद्योगिक ऋणों को ईक्विटी में परिवर्तित कर देती थीं।

6) विदेशी निजी निवेश के लिए नियमों और विधियों में बहुत अधिक उदारीकरण। अधिकतर उद्योगों में 50% ईक्विटी सहभागिता की मंजूरी देने के लिए विदेशी मुद्रा विनियमन अधिनियम (FERA) को उदार बनाया गया। FERA के स्थान पर अब विदेशी मुद्रा प्रबंध अधिनियम (FEMA) बनाया गया है।

7) सार्वजनिक क्षेत्रक के अनन्य आधिपत्य में कमी कर दी गई है। अब केवल पाँच उद्योग (रक्षा से संबंधित उद्योग, ऐटोमिक एनर्जी, खनिज तेल और खनन) ही सुरक्षित रखे गए हैं। परंतु निजी क्षेत्रक इन उद्योगों के संबंध में आवेदन कर सकते हैं। इसके अतिरिक्त लाभ कमाने वाले कुछ सार्वजनिक उद्यमों में आंशिक रूप से निजीकरण किया जाने लगा है। इस प्रकार (i) सार्वजनिक क्षेत्रक को सामरिक, हाई-टैक एवं अनिवार्य आधारिक संरचनाओं तक सीमित किया जा रहा है, (ii) सार्वजनिक क्षेत्रक के बीमार उद्यमों के मामलों को BIFR को सौंपा जाना, (iii) सार्वजनिक क्षेत्रक के उद्यमों (PSUs) के शेयर धारण (shareholding) के एक भाग का विनिवेश करना (iv) MOU प्रपत्र द्वारा PSU को अधिक स्वायत्तता देना, तथा (v) बीमार इकाइयों को बंद किए जाने या PSU में कर्मचारियों को विवेकपूर्ण ढंग से काम पर लगाने के फलस्वरूप कर्मचारियों की यदि छँटनी होती है तो उनके हित में उचित कार्य करना।

8) काले धन की समस्या की जड़ पर ही धावा बोला जाने लगा। कुछ उपाय तो काले धन के अर्जन (प्रवाह) पर रोक लगाने के संबंध में किए गए तथा कुछ अर्जित काले धन (स्टॉक) को उत्पादन कार्य के लिए सरकारी अधिकार में लेने के संबंध में किए गए।

9) राजकोषीय नीति सुधार : इन सुधारों ने (क) सरकारी व्ययों में कटौती करने का निर्णय लिया, (ख) व्यक्तिगत आय करों, कंपनी करों, उत्पादन शुल्कों और सीमा शुल्कों की दरों को कम किया तथा उनका सरलीकरण किया।

10) अब तक शुरू किए गए वित्तीय क्षेत्रक सुधार निम्नलिखित है :

क) निजी क्षेत्रक में म्युचुअल फंड की मंजूरी दे दी गई,

ख) वैधानिक तरलता अनुपात (SLR) को कम कर दिया गया और बहुत ही अधिक कम किया गया, बैंकिंग क्षेत्रक को निजी क्षेत्रक के लिए खोल दिया गया तथा शीघ्र ही बीमा क्षेत्रक में भी निजी क्षेत्रक के प्रवेश की अनुमति दी जाएगी।

11) स्टील उद्योग पर विनियमन को हटा दिया गया।

12) लघु उद्योगों और बहुत ही छोटे उद्यमों में बनी वस्तुओं के संबंध में नीति घोषणा।

13) स्वर्ण-नीति में सुधार : बैगेज नियमों के अधीन सोना का आयात करने की मंजूरी।

14) आयात संबंधी सूची को कम करना। अब बहुत थोड़ी सी ऐसी वस्तुएँ हैं जिनके आयात की अनुमति नहीं है।

फिर भी ध्यान देने की बात यह है कि प्रक्रिया अभी तक पूरी नहीं हुई है। जो कार्य अब तक नहीं किए जा सके हैं वे अनेक हैं तथा उन्हें तीन व्यापक श्रेणियों में विभक्त किया जा सकता है, वे हैं : (i) अब

तक जो कुछ भी किया गया है वह अभी शुरुआत मात्र है। इस प्रक्रिया को और आगे बढ़ाना है और उपर्युक्त क्षेत्रों में उन्हें और सशक्त करना है, (ii) ऐसे अनेक क्षेत्र हैं जिन्हें अभी तक स्पर्श तक नहीं किया गया और (iii) इन सुधारों की शुरुआत करने के बाद कुछ ऐसी समस्याएँ उत्पन्न हो गई जिनके संबंध में कल्पना भी नहीं की गई थी। उनके संबंध में विचार करने और उनका समाधान करने की आवश्यकता है।

कुल मिलाकर हम देखते हैं कि 1960 और 1970 के दशकों के लाइसेंस परमिट राज की तुलना में उपर्युक्त पैकेज नीति-चिंतन के संबंध में पूर्ण परिवर्तन है। 1970 और 1980 के दशकों में नियंत्रणों को कम करने के संबंध में कुछ उपाय तो किए गए लेकिन इस समय जो कुछ किया जा रहा है उसकी तुलना में वे कुछ भी नहीं थे। एक के बाद दूसरे नीति-वक्तव्यों को सरकार ने इतनी शीघ्रता से घोषित करना ज़ारी रखा कि उससे भारतीय घटनाओं के प्रेक्षक बहुत ही प्रभावित हुए। निर्णयों को लेने में तीव्रता सचमुच ही अद्भुत थी। लेकिन सुधारों के मूल लक्ष्यों के अंतर्गत जो प्राप्त करना आवश्यक होता है उसके परिप्रेक्ष्य में यदि हम संबंधित नीतियों का परीक्षण करते हैं तो पाते हैं कि नीति निर्णयों का रिकार्ड बहुत प्रभावशाली नहीं रहा। अब तक जो कुछ हुआ है वह अच्छी शुरुआत मात्र है, फिर भी अभी बहुत कुछ करना बाकी है। किए जाने वाले कार्यों की सूची बहुत लंबी है।

बोध प्रश्न 1

1) जून 1990 में अर्थव्यवस्था को जिन चार समस्याओं का सामना करना पड़ा, उनके संबंध में लिखिए।

....

....

....

....

....

2) भारत में आर्थिक सुधारों को अपनाने के कारण क्या थे?

....

....

....

....

....

3) आर्थिक सुधार पैकेज से आप क्या समझते हैं?

....

....

....

....

....

भारत में आर्थिक सुधारों की प्रगति का परीक्षण कीजिए।

....

....

....

....

....

28.5 आर्थिक सुधार और सामाजिक न्याय

प्रमुख विचारणीय विषय यह नहीं है कि आर्थिक सुधारों के उपाय गरीबों के विरोध में हैं या नहीं, बल्कि यह है कि क्या वे वास्तव में गरीबों के हित में हैं। अन्य शब्दों में कहा जा सकता है कि क्या आर्थिक सुधारों में स्पष्ट रूप से न्याय संगति (equity) का आयाम है। वास्तविकता तो यह है कि नौकरी से छँटनी किए गए श्रमिकों के लिए बनाए गए राष्ट्रीय नवीकरण कोष (NRF) सहित सामाजिक क्षेत्र में खर्च की जाने वाली नीतियों को 'सेफ्टी नेट' कहा जाता है अतः ऐसी नीतियों से आशय होता है ईक्विटी हानियों की प्रतिपूर्ति करना। यह आवश्यक नहीं कि इनके फलस्वरूप आय की वर्तमान संरचना और देश में असमानता की स्थिति में सुधार हो।

ऐसे क्षेत्र हैं जिनमें सरकार की ओर से हस्तक्षेप विशेषतः इसलिए आवश्यक होता है कि यह सुनिश्चित किया जा सके कि कार्यकुशलता के लाभ के साथ-साथ आर्थिक सुधार के उपायों का साम्या (equity) पर भी सकारात्मक प्रभाव पड़े। ये क्षेत्र निम्नलिखित हैं : (i) रोज़गार, (ii) भोजन की सुरक्षा, (iii) स्वास्थ्य, (iv) शिक्षा, (v) प्रौद्योगिकी तथा (vi) पर्यावरण/साम्या आर्थिक सुधार उपायों का स्पष्ट लक्ष्य तो नहीं है, फिर भी यह आवश्यक है कि ऐसा हो। इसके साथ ही साथ भारत के संदर्भ में साम्या के अर्थ की स्पष्ट परिभाषा भी विकसित की जानी चाहिए।

एक अन्य महत्त्वपूर्ण विचारणीय विषय यह है कि सुधार के कार्यों के सामाजिक प्रभाव का आकलन करते समय हानियों (equity losses) के रूप में सुधार कार्यों की 'संक्रमण लागतों' तथा वर्तमान आर्थिक प्रणाली की असमान स्वरूप के फलस्वरूप भूतपूर्व सामान्य हानियों के बीच अंतर करना आवश्यक होता है। परंतु वर्तमान सामाजिक और आर्थिक व्यवस्था के असमतावादी परिणामों और आर्थिक सुधार संबंधी उपायों के विशिष्ट उत्पाद के बीच भ्रम नहीं होना चाहिए।

अधिक साम्या के लिए सरकारी सहायता की माप करते समय केवल बजट आबंटन के संबंध में ही विचार करना सही नहीं होगा, बल्कि संसाधन आबंटन की रक्षता के संबंध में भी विचार करना होगा। इस संबंध में प्रश्न यह उठेगा कि यदि राजकोषीय स्थिरीकरण के कारण कुल आबंटन में कमी की जाती है तो क्या वर्तमान संसाधनों के भलीभाँति उपयोग में सामाजिक सुधारों से मदद मिलेगी?

आर्थिक सुधार कार्यों का अर्थ यह नहीं है कि अर्थव्यवस्था और समाज के सभी क्षेत्रों से सरकार अपना हाथ खींच ले। कुछ क्षेत्रों में सरकारी हस्तक्षेप/सहायता की कम आवश्यकता होगी लेकिन स्वास्थ्य, शिक्षा और समाज-कल्याण जैसे क्षेत्रों में सरकार को बहुत कुछ करना होगा।

शिक्षा, स्वास्थ्य और सार्वजनिक वितरण प्रणाली के संबंध में अधिक जोर इस बात पर है कि इन सेवाओं का प्रावधान करना अभी भी महत्त्वपूर्ण है तथा सार्वजनिक क्षेत्रक में इन सेवाओं की गुणवत्ता का सुधार करने के संबंध में पर्याप्त रूप से ध्यान नहीं दिया जा रहा है। इसके विपरीत इन सेवाओं के क्षेत्र में बढ़ते हुए निजीकरण के फलस्वरूप दोहरे प्रकार का ढाँचा बन गया है, जिसमें अधिक मूल्य अधिक गुणवत्ता वाला निजी क्षेत्रक बढ़ता जा रहा है जबकि कम मूल्य कम गुणवत्ता वाले सार्वजनिक क्षेत्रक में गतिरोध की स्थिति आ गई है। यदि सरकार अधिक धन का निवेश नहीं करती है तथा इन सेवाओं की गुणवत्ता में सुधार नहीं लाती है तो समाज पर बुरा असर पड़ेगा और राष्ट्र को क्षति होगी।

यदि वित्तीय आबंटन सार्वजनिक सहायता की माप नहीं है, तो इस बात का भी कोई प्रमाण भी नहीं है कि संसाधनों के उपयोग के संबंध में सरकार पहले की अपेक्षा अधिक वचनबद्ध है। इसलिए इस समय

सरकार के सम्मुख वास्तविक चुनौती यह नहीं है कि वह सामाजिक क्षेत्रकों में अपनी भूमिका को कम कर दे बल्कि यह है कि वह जनता की आवश्यकताओं के अनुरूप अधिक कार्य करे।

आर्थिक सुधार के लिए लोकप्रिय आधार तभी बनेगा जबकि आम जनता यह महसूस करे कि उनके जीवन स्तर में सुधार हो रहा है। विनियमन को हटाना, नौकरशाही को समाप्त करना, विनियंत्रण, विनिवेश आदि ऐसे उपाय हैं जिनके द्वारा सरकार जनता के आर्थिक जीवन से अपने संबंधों को कम करती है। व्यवसाय-समाज तो यही चाहता है, लेकिन जनता तो चाहती है कि सरकार अपने कार्यक्षेत्र में कमी न करे बल्कि वह अपने कार्यों को अधिक कुशल और मानवोचित बनाए। क्योंकि सरकार की ओर से कम कार्य सरकार की ओर से अच्छे कार्य का स्थान नहीं ले सकता। (संजय वारू, 1993)

प्रो. वी.एस. व्यास ने केंद्रीय सरकार को आगाह किया है कि घाटे को कम करने के लिए वह शिक्षा, स्वास्थ्य, आधारिक संरचना तथा मानव संसाधन विकास जैसे क्षेत्रकों पर बिना सोचे समझे सरकारी खर्चों को कम न करे। घाटे को कम करने के जोश में विकास के लिए महत्वपूर्ण खर्चों को कम करना उचित नहीं है। राजकोषीय समायोजन और आर्थिक सुधार केवल ड्राइंग रूम में विचार-विमर्श के विषय नहीं हैं। संक्रमण की अवधि में आर्थिक अव्यवस्था से गरीब लोगों पर भार पड़ता है, जिसमें समायोजन की आवश्यकता है। सामाजिक सुरक्षा के उपायों के संबंध में हम कुछ भी कहें, परंतु इसमें कोई संदेह नहीं कि इस कार्य के लिए हमारे पास संसाधन नहीं हैं, इतना कहना मात्र पर्याप्त नहीं है कि समायोजन के भार का वहन सम्पन्न लोगों और मध्यम वर्ग को करना होगा। ऐसा इसलिए कि समाज के सम्पन्न लोगों की आय इतनी अधिक है कि वे संरचनात्मक समायोजन के भार से अपनी रक्षा कर सकते हैं।

28.5.1 मानवीय चेहरे के साथ सुधारों की आवश्यकता

तकलीफ सहे बिना समायोजन नहीं हो सकता, फिर भी संक्रमण को सामाजिक लागतों को कम करने के लिए जो कुछ संभव हो सके वह करना चाहिए, विशेषतः गरीबों पर पड़ने वाले भार को कम करने के लिए पूर्ति पक्ष की पुनः संरचना से, जो संरचनात्मक सुधारों के बाद में आती है, श्रमिकों पर अवश्य ही भार पड़ेगा। ऐसी स्थिति में **'मानवीय चेहरे के साथ समायोजन'** मुहाबिरु निरर्थक और भ्रांतिजनक बन जाएगा। (दीपक नायर, 1992)

इस संदर्भ में हम निम्नलिखित विचार से सहमत हो सकते हैं :

सुदृढ़ समष्टि-आर्थिक नीतियों का समुचित सामाजिक लक्ष्यों तथा संवृद्धि पर दीर्घकालीन बाधाओं को दूर करने के साथ तालमेल बैठाना होगा। ऐसे तालमेल के लिए कोई सरल मार्ग तो नहीं है, फिर भी इसमें कोई संदेह नहीं कि नीतियों, जनमत और राजनैतिक व्यवहार को आमूल परिवर्तन की आवश्यकता है। सचाई तो यह है कि इन सभी में परस्पर घनिष्ठ संबंध है। (आई.जी. पटेल)

नीति निर्धारकों को इस बात की उपेक्षा नहीं करनी चाहिए कि भारत के साथ किए गए किसी भी प्रकार के प्रयोग (वह कितने भी भले इरादे से किया गया हो) में 100 करोड़ लोगों के कल्याण को ध्यान में रखना चाहिए, केवल 20% ऊपर के तबके के लोगों के ही कल्याण को नहीं, जो पश्चिम के बाज़ार की आवश्यकताओं को पूरा करते हैं, इस प्रकार हम देखते हैं कि देश में यदि उच्च कोटि की प्रौद्योगिकी आ जाती है तो उद्योग प्रणाली के दर्जे को ऊँचा उठा दिया जाता है और निर्यात में बढ़ोत्तरी हो जाती है। परंतु यदि देश में गरीबी की रेखा से नीचे के लोगों की हालत में सुधार नहीं होता तो आर्थिक सुधार के कार्यक्रम को सफल नहीं माना जा सकता। विश्वव्यापीकरण की संकल्पना में गरीबों के लिए कोई प्रावधान नहीं है, यदि उनकी सुरक्षा के उपाय न किए जाएँ।

भारत में संरचनात्मक समायोजन के मानवीय चेहरे और राजकोषीय स्थिरीकरण का अनुमान लगाते समय हम पूछ सकते हैं कि हमारे सकल राष्ट्रीय उत्पाद (GDP) में खाद्य सहायिकी (food subsidy) का अंश क्या है? यह GDP के 1% से ऊपर है। ऐसी स्थिति में इसके संबंध में हम चिंता क्यों करें, जब हमारी

KEXAMS

जनसंख्या का 40% गरीबी की रेखा के नीचे है? खाद्य सहायिकी में हेरफेर न करें बल्कि उसे और अच्छा बनाएँ। सार्वजनिक वितरण प्रणाली (PDS) द्वारा लोगों को उचित कीमतों पर खाद्यानों की पूर्ति करनी चाहिए, ऐसा विशेषतः इसलिए कि भारत में PDS की निर्गम कीमतों के साथ मुद्रास्फीति की प्रवृत्तियों का गहरा संबंध होता है।

डॉ. वी.एस. व्यास ने PDS के प्रति सरकार के रुख में असंगतता के प्रति ध्यान आकर्षित किया है। एक ओर तो वह PDS द्वारा गरीबों की मदद करना चाहती है परंतु दूसरी ओर खाद्यानों की कीमतों को बढ़ा रही है। कीमत वृद्धि के मुद्रास्फीति प्रभाव से डॉ. व्यास चिंतित हैं और उनका कहना है कि "अधिक साहसपूर्ण और वांछनीय कदम होगा आगतों पर सहायिकी को कम करना। राजकोषीय घाटे को कम करने के प्रयास में सरकार सामाजिक परिणामों के प्रति उदासीन होती जा रही है।" ऐसा करना मुद्रास्फीति की दर को एक सीमा के नीचे रखने की सरकार की इच्छा के विपरीत है। खाद्यान्नों की कीमतों को बढ़ाने के कुछ प्रयोजनों की पूर्ति तभी हो सकती है जब सरकार राजकोषीय अनुशासन को गंभीरता से ले तथा वह आयगत व्ययों पर कड़ाई से रोक लगाए। यदि अनुत्पादक सरकारी व्ययों को कम नहीं किया जाता तो इसका मुद्रास्फीति पर प्रभाव पड़ सकता है। खाद्य पदार्थों की कीमतें अत्यंत संवेदनशील विषय हैं और इतिहास इस बात का गवाह है कि इन कीमतों को बढ़ाकर स्थिरीकरण और समायोजन कार्यक्रमों को बदनाम किया गया है।

यह घोषित करके कि जनजाति क्षेत्रों और कुछ अन्य पिछड़े हुए क्षेत्रों में खाद्यान्नों को सस्ते दाम पर बेचा जाएगा, सरकार ने PDS द्वारा गरीबों की मदद करने का प्रयास किया है। नगरीय क्षेत्रों के संपन्न वर्ग के लोगों को वह PDS से वंचित कर सकती है, जिसका अर्थशास्त्री समर्थन करते हैं लेकिन सभी पक्ष के राजनीतिज्ञ विरोध करते हैं। देखना यह है कि क्या सरकार अपने इस प्रयास में सफल हो पाती है या यह प्रयास भ्रष्टाचार आदि के चपेट में आ जाता है। गरीबों का यदि सचमुच कल्याण करना है PDS बास्केट के स्वरूप को बदलना होगा। चीनी तथा खाद्य तेलों जैसे उच्च कोटि के खाद्य पदार्थों को PDS द्वारा सहायिकी देने का कोई औचित्य दिखाई नहीं देता। अच्छा तो यह होगा कि पिछड़े हुए में वितरण किए जाने वाले खाद्यान्नों का बहुत बड़ा भाग मोटा अनाज हो। चूँकि सम्पन्न लोग ऐसे खाद्यान्नों को पसंद नहीं करते अतः वितरण में भ्रष्टाचार कम होगा। गरीबों की मदद करने का एक दूसरा साधन है कम मजदूरी पर ग्रामीण रोज़गार कार्यक्रमों को चलाना, जिसमें वे ही लोग काम करने जाएँगे जिन्हें सचमुच ही रोज़गार की आवश्यकता है।

राजकोषीय समायोजन, जिसका लक्ष्य सरकार की आय और व्यय के बीच के बहुत बड़े अंतर को कम करना था, व्यापक आर्थिक स्थिरीकरण कार्यक्रम का केंद्र था।

प्रोफेसर दीपक नायर के अनुसार समायोजन की गुणवत्ता बहुत अच्छी नहीं है। इसके तीन कारण हैं : (क) राजकोषीय संकट का यह सही समाधान नहीं है, (ख) आर्थिक संवृद्धि में यह बाधक सिद्ध हो सकता है और (ग) समायोजन असमान रूप में हो सकता है। ऐसे समय में जब व्यय-समायोजन के द्वारा हम गरीबों पर बहुत बड़ा भार डाल रहे हैं, साम्या के सिद्धांत (equity principle) की माँग है कि धनी और सम्पन्न तबके के लिए प्रत्यक्ष करों को चुकाकर गरीबों के भार को कम करें।

इस प्रकार, जैसा कि प्रोफेसर दीपक नायर ने लिखा है, ऐसा लगता है कि बजटों में किए गए राजकोषीय प्रावधान में यह बताने पर ध्यान नहीं दिया गया कि समायोजन क्यों करना पड़ा। बजट बनाने वाले वास्तविकता के बजाए रूप के और गुणवत्ता के बजाए मात्रा के संबंध में अधिक चिंतित थे। इसके अतिरिक्त समायोजन का प्रभाव प्रतिगामी रहा है। 1980 के दशक में सरकार और जनता को ऐसे दौर से गुजरना पड़ा जब साधन बहुत ही कम थे। ऐसी अपव्ययिता के समय में सम्पन्न लोगों ने बहुत ही लाभ उठाया। परंतु आज उन्हें समायोजन का भार नहीं उठाना पड़ रहा है जबकि गरीब लोग ये भार उठा रहे हैं।

प्रो. ए.एम. खुसरो का मत है कि नई नीति का प्रभाव केवल सम्भ्रांत उद्योग और वाणिज्य समाज पर पड़ा है। ये हैं– आयातकर्ता, निर्यातकर्ता, व्यापारी, कुछ विनिर्माता और अनिवासी भारतीय (NIR)। इस नीति

के संबंध में तर्क यह दिया जाता है कि इन तत्वों को यदि पूरी आज़ादी दे दी जाए तथा वे सुधरी हुई कार्यकुशलता के साथ प्रतियोगी उत्पादन करने लगें तो विभिन्न क्षेत्रकों के उत्पादन में तेजी से वृद्धि होगी। बढ़े हुए उत्पादन के लिए अधिक श्रमशक्ति की आवश्यकता होगी तथा उत्पादन और पूर्ति में सुधार होने के फलस्वरूप मुद्रास्फीति पर रोक लगेगी, जिससे आम जनता को लाभ होगा। अन्य शब्दों में कहा जा सकता है कि यदि इस नीति को कार्यान्वित नहीं किया जाता है तो समय के साथ-साथ उत्पादन और रोजगार की मात्रा में कमी होती जाएगी। अंततः आम जनता इस नीति के संबंध में अपना निर्णय रोजगार, कीमतों, उत्पादित वस्तुओं की उपलब्धता तथा मुद्रास्फीति की दर में गिरावट पर इसके प्रभाव के आधार पर देगी। लेकिन यह सब इस बात पर निर्भर करेगा कि कार्यान्वयन का प्रथम चरण सफल हो पाता है ग नहीं। यही कारण है कि अधिक महत्त्वपूर्ण बात नीतियों को कार्यान्वित करना है।

बोध प्रश्न 2

1) 'सामाजिक चेहरे के साथ समायोजन' से आप क्या समझते हैं?

....

....

....

....

....

2) सुरक्षा के उपायों (safety net) से आप क्या समझते हैं?

....

....

....

....

....

3) इस समय चल रहे आर्थिक सुधार के कार्यक्रमों में सार्वजनिक वितरण प्रणाली (PDS) की भूमिका का वर्णन कीजिए।

....

....

....

....

....

28.6 सारांश

सुधार का कार्य चुनौतीपूर्ण होता है। सुधार के प्रति प्रतिबद्धता के साथ-साथ गरीबी को दूर करने के संबंध में भी ध्यान देना चाहिए। परिवर्तन की प्रक्रिया के परिणामों का सामना करने के लिए सुरक्षा के उपाय किए गए हैं। हमारे सामाजिक और आर्थिक ढाँचे में सन्निहित सामाजिक नीति की आवश्यकताओं के अनुसार की हालतों में सुधार पर जोर दिया गया है। योजना की प्रक्रिया में इसे शामिल करना होगा। अतः यह उचित है कि बाज़ार की प्रक्रिया यदि योजना की प्रक्रिया को विरूपित करती हैं तो सरकार का कर्तव्य हो जाता है कि वह सुविधावंचित लोगों की मदद करे। यदि बाज़ार का उल्लंघन नहीं किया जाता बल्कि उसकी

विकृत्तियों को दूर करने का प्रयास किया जाता है तो समता के साथ-साथ संवृद्धि के सामाजिक लक्ष्यों को कायम रखा जा सकता है। सुधार की प्रक्रिया को इसी आधार पर बनाए रखा जा सकता है।

जहाँ तक मानवीय चेहरे के साथ-साथ आर्थिक सुधार का प्रश्न है, इस संबंध में जो प्रगति हुई है वह लक्ष्य के अनुरूप नहीं है। उदारीकरण के नौ वर्षों बाद भी जनसंख्या का बहुत बड़ा भाग विकास में हुई प्रगति से वंचित है। अभी तक स्पष्ट संकेत नहीं मिल पाया है कि मानवीय चेहरे के संबंध में उदारीकरण के लक्ष्यों की पूर्ति कहाँ तक हो पाई है। इस संबंध में मात्रात्मक लक्ष्यों की तुलना करना संभव नहीं है क्योंकि आर्थिक सुधार के उपाय इसकी गति की दिशा बताते हैं, स्पष्ट लक्ष्य को नहीं। मानवीय चेहरे की ओर सुधार की गति बहुत धीमी है। सुधार के उपायों के ढाँचे के अंतर्गत पुनः वितरण प्रणाली को शामिल करने की आवश्यकता है।

दीर्घकालीन युक्तियों के लिए निम्नलिखित सात मुद्दों पर राष्ट्र का ध्यान केन्द्रित करने की आवश्यकता है : (i) बचत की दर में तेजी से वृद्धि, विशेषतः सार्वजनिक क्षेत्रक और निजी कंपनी क्षेत्रक की बचत दर में, (ii) निर्यात में तेजी से वृद्धि को राष्ट्र का आर्थिक प्रयास बनाना, (iii) अधिक निर्यात करने के संबंध में ध्यान देना, (iv) कर वसूल करने की बेहतर प्रणाली, (v) सामाजिक न्याय की ओर अधिक ध्यान देना, (vi) आधुनिकीकरण की पारिस्थितिक लागत पर ध्यान दिए बिना पर्यावरणी आर्थिक संवृद्धि पर अधिक ध्यान नहीं दिया जा सकता, और (vii) गाँवों का विकास करना जिससे ग्रामीण क्षेत्रों में कृषि और उद्योग क्षेत्रकों में रोज़गार के अवसर पैदा हों। इससे ग्रामीण क्षेत्रों में सम्पन्नता आएगी तथा नगरों में भीड़-भाड़ कम होगी।

28.7 शब्दावली

अवमूल्यन (**Devaluation**)	:	दो मुद्राओं के बीच के नियत विनिमय दर का गिरना।
मूल्यओस (**Depreciation**)	:	ऐसी स्थिति जिसमें पूर्ति और/या माँग की शक्तियों में परिवर्तन के फलस्वरूप अन्य मुद्राओं की तुलना में किसी मुद्रा का मूल्य गिर जाता है।
विनिमेयता (**Convertibility**)	:	मुद्रा का एक गुण जिसके अनुसार उसे किसी अन्य मुद्रा या सोना के रूप में मुक्त रूप से बदला जा सकता है।
व्यापार स्थिति (**Terms of Trade**)	:	निर्यातों की कीमतों और आयातों की कीमतों के बीच का संबंध।
घाटा (**Deficit**)	:	ऐसी स्थिति जिसमें चालू आधार पर आय से व्यय अधिक होता है या किसी विशेष समय बिंदु पर परिसंपत्तियों से देयताएँ अधिक होती हैं।

28.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

Baru, Sanjay (1993) : "NEP: The Equity Dimension", *The Economic Times*, March 25.

Chona, Jag M. (1992) : "Adjustment: Contours of the Human Face", *The Economic Times*, March 23-24.

Datta, Bhabatosh (1992) : "Alternative Strategy: The Basic Issues", *Business Standard*, August 26.

Datt, Ruddar (1993) : "Impact of New Economic Policy", *Financial Express,* January 27.

_________ (2000) : *Indian Economy* (Chapter-13), S. Chand & Co. Ltd., New Delhi.

Ghosh, Arun (1992) : "Self-reliance, Recent Economic Policies and Neo-Colonialism", *Economic and Political Weekly*, April 25.

Government of India (1993) : Economic Reforms: Two years After and the Task Ahead.

Khusro, A.M. (1991) : Old order changeth yielding place to New, First VKRV Rao Memorial Lecture delivered at the 74th Annual Conference of the Indian Economic Association at Anantapur (AP), December, 28.

Nayyar, Deepak (1992) : "Perceptions (interview column)", *The Economic Times,* February 18 and 25.

__________ : "(1994), Fiscal Adjustment: Why and For Whom?" *Times of India,* February 27.

Patel, I.G. (1991) : "New Economic Policies: A Historical Perspective", *IIM-B Foundation Day Lecture 1991,* Bangalore, October 21.

Sen, Chiranjib (1998) : "The Budget, Government Style and Sustainability of Economic Reforms in India", *Economic and Political Weekly*, November 7.

Singh, Ajit Kumar (1993) : "Social Consequences of New Economics Policies", *Economic and Political Weekly*, February 13.

Vyas V.S. (1993) : "New Economic Policy and Vulnerable Sections- Rationale for Public Intervention", *Economic and Political Weekly*, March 6.

28.9 बोध प्रश्नों के उत्तर अथवा दिशा-संकेत

बोध प्रश्न 1

1) भाग 28.2 देखें।

2) उपभाग 28.2.1 देखें।

3) भाग 28.3 देखें।

4) भाग 5.4 देखें।

बोध प्रश्न 2

1) भाग 28.5 देखें।

2) भाग 28.5 देखें।

3) भाग 28.5 देखें।